Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVI, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारतीय नारी की दशा और दिशा

बद्रीलाल डाबी* डॉ. गुलाबसिंह डावर डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा *****

* शोधार्थी (हिन्दी) विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** शोध निर्देशक, शा. विक्रम महाविद्यालय, खाचरोद, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
*** विभागाध्यक्ष, हिन्दी अध्ययनशाला, सह निर्देशक (हिन्दी) विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह, जिन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थों की सार्वजनिक रक्षा के लिए, अपने विषम आचरणों में समझौता उत्पन्न करने वाले कुछ नियमों से शासित होने का समझौता कर लिया है। मनुष्य को समूह बनाकर रहने की प्रेरणा–पशु जगत के समान प्रकृति से मिली है, इसमें संदेह नहीं, परन्तु उसका क्रमिक विकास विवेक पर आश्रित है। मानसिक विकास के साथ–साथ उसमें जिस नैतिकता की उत्पत्ति और वृद्धि हुई उसने पशु जगत से सर्वथा भिन्न कर दिया। मनुष्य समाज समूह में न रहकर वह धीरे–धीरे ऐसी संस्था में परिवर्तित हो गया जिसका ध्येय सिर्फ लौकिक सुविधाएँ पाना है।

समाज और व्यक्ति – आदिम युग का मनुष्य, समूह में रहते हुए भी पारस्परिक स्वार्थ की विवेचना और उसकी समस्याओं से अपरिचित रहा होगा। अनुमानत: सामाजिक भावना का जन्म परस्पर हानि पहुँचाने वाले आचरण से तथा उसका विकास नवीन स्थानों में उत्पन्न संगठन की आवश्यकता से हुआ होगा। 'मनुष्य जाति जब जीवन के लिए अधिक सुविधाएँ प्रदान करने वाले प्रदेशों में फैलने लगी तब उसके भिन्न–भिन्न समूहों को अपनी शक्तियों का द्रढ़तर संगठन करने की आवश्यकता ज्ञात हुई। विभिन्न व्यक्तियों के बीच रहकर मनुष्य शक्ति और दुर्बलता का पाठ सिख लिया। एकता के सूत्र में बंधकर अपने आपको सबला बना लिया। मनुष्य समूह ही हमारे विकसित तथा अनेक नैतिक और धार्मिक बंधनों में बंधे सभ्य समाज का पूर्वज माना जाता है। व्यक्ति के स्वत्त्वों की रक्षा के लिए समाज बना है। समाज के अस्तित्य के लिए व्यक्ति आवश्यकता रही है। एक सामाजिक प्राणी स्वत्तंत्र और परतंत्र दोनों ही है।

भारतीय संस्कृति में नारी – भारतीय नारी भारत की सजला–सफला मलयज शीतला पर विकसित होने के कारण न अनुदार हो सकी है न आक्रामक नारी के पुरूष को सूक्ष्म विचार से लेकर स्थूल कर्म तक को एक ऐसे स्वर्णिम सूत्र में बाँधा है, जिसमें जीवन के सार्वभौम विकास देने वाले सभी मूल्य पिरोये जा सकें भारतीय संस्कृति में नारी के आत्म रूप को ही नहीं उसके दिव्य रूप की प्रतिष्ठा भी दी है। जिसके चलते गृह के दो घटक नारी और पुरुष, इसी से उन्हें दंपति कहा गया है। हमारा समाज आज भी जातकर्म विवाह रूढ़ि में इतना ग्रस्त है कि उसे निकाल पाना असंभव है। वह रूढ़ि के निकट पहुँच गया है, जितना उससे दूर है। वर्तमान के पास लाना असंभव ही नहीं मुश्किल जान पड़ता है।

वेदकालीन संस्कृति में नारी – सामान्यत: इस संस्कृति में नारी के दिव्य देवी रूप तथा सामाजिक रूप मिलते है – दिव्य देवी रूप में उषक्ष, सूर्या, रात्रि, सिन्धु, सरस्वति, पृथ्वी, नदी आदि में चेतना का आरोप करके, नारी रूप की कल्पना की गई। सामाजिक भावनाओं की प्रतीक देवियों के रूप में जिन्हें हम, अदिति, दिति, श्रद्धा आदि की संज्ञा देते है। जीवन के रंग में जन्मी नारी को पुरूष ने जिन रेखाओं और रंगों से अंकित किया गया है। यह बतलाना कठीन है। नारी सौंदर्य को ही नहीं, प्रकृति के चिर नवीन सामंजस्य को भी व्यक्त किया है। उपनिषद कहता है कि ब्रह्मा ने एकाकी न रहकर अपने आपको दो में विभक्त कर लिया है। जिसके दक्षिण अंश को पुरूष तथा वाम को नारी की संज्ञा दी गई है। आगे चलकर शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप में भी यह धारणा साकार हुई है। इस काल में नारी का कर्मक्षेत्र केवल गृहिणी नहीं था, वह संतान की रक्षा, राष्ट्र की रक्षा का समावेश भी करती थी।

प्राचीन संस्कृति में नारी – प्राचीन काल में शारीरिक बल का अधिक महत्व होने के कारण समस्त संसार में पुरुषों की अपेक्षा नारियों की दशा हीन थी। 'रामायण के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस काल में नैतिक मूल्य बहुत ऊँचे थे, परन्तु उनके पालन में नारियों और पुरुषों में भेदभाव नहीं किया जाता था। नारी के लिए पतिव्रता होना एक प्रशंसनीय गुण समझा जाता था।' वनगमन के समय जब राम कुशचीर धारण करते है तो वसिष्ठ और दशरथ दोनों ही सीता को कुशचीर धारण करने से रोक देते है। राजनीति के क्षेत्र में भी नारिया नगण्य नहीं थी और आवश्यकता पड़ने पर शासन का कार्य भी करती थी। राजाओं में बहुपत्नी प्रथा तथा विधवाओं का समाज में सम्मान पूर्ण स्थान था।

आधुनिक संस्कृति में नारी – नारी ने जब पहले–पहले अपनी स्थिति पर असंतोष प्रकट किया उस समय उसकी अवस्था उस पीड़ित के समान है जिसकी वेदना व अप्रकट कारण का निदान न हो सक हों। उसे असहा व्यथा है। परन्तु इस विषय में 'कहाँ' और 'क्या' का कोई उत्तर नहीं मिलता है। परन्तु पुरुष से अपनी तुलना करके जो अन्तर पाया उसी को अपनी दयनीय स्थिति का स्पष्ट कारण समझ लिया। पुरुष भायुकता का आश्रय लेकर उसे रमणी समझता है। यह हमारी हीनता का द्योतक है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए की स्त्री ने सामूहिक रूप से जितना पुरुष को दिया, उतना उससे पाया नहीं है। यह निर्विवाद सत्य है। इस आदान–प्रदान की विषमता में, मूल में स्त्री और पुरूष की प्रकृति भी कार्य करती है। स्त्री में 'माँ', 'बहिन', 'पत्नी' के रूप

के गुण मातृत्व व ममता की पूर्ति के लिए प्रकृति से है।

आधुनिकता की वायु में पली स्त्री का यदि स्वार्थ में केन्द्रित विकसित रूप देखना हो तो हम उसे पश्चिम में देख सकेंगे। स्त्री वहाँ आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो चुकी है। 'किन्तु हमारे देश में वर्तमान समय में पुरुषों और स्त्रियों में गंभीर रूप में असमानता व्याप्त है।' पुरूष ने स्त्री की गति पर बंधन लगाकर अन्याय ही नहीं, अत्याचार भी किया है। जो पशु है, उसी के साथ गतिहीन होने का अभिशाप लगा है। स्त्री का जीवन तरल पदार्थ के समान घटता जा रहा है। अपने जीवन को अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति के अनुरूप बनाने में असमर्थ रही। भविष्य में भारतीय समाज की क्या रूप रेखा हो ? उसमें नारी की स्थिति कैसी हो ? उसके अधिकारों की सीमा क्या हो? आदि समस्याओं का समाधान आज की जाग्रत और शिक्षित नारी पर निर्भर है।

नारी का पत्नीत्व जीवन – नारी का जीवन का प्रथम लक्ष्य पत्नीत्त्व तथा अतिम मातृत्व समझा जाता रहा है। अत: उसके जीवन का, अजीविका का साधान निश्चित है। समाज की स्थिति के लिए मातृत्व पूज्य है, व्यक्ति की पूर्णता के लिए सहधार्मिणीत्व भी श्लाधय है। कन्या का जन्म होते ही माता-पिता का ध्यान सबसे पहले उसके विवाह पर जाता है। लज्जा का विषय यह है कि हम उसे क्रय-विक्रय की वस्तु मानते है। क्रय करने वाले की नजर में वह आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाती तो वह दहेज की बलि चढ़ा दी जाती है। जिसका निदान आज तक संभव नहीं है।

जनमानस में सारे इंसान, औरत मर्द समान है। 'पुरुष वर्चस्व' शोषक संपति प्रणाली के चलते वजूद में आया। शोषक समाज में पिता का शासन स्थापित हुआ। परिवार में पुरूष औरतों बच्चों का मालिक और अधिकारी होता है। स्त्रियों को हर काम करने का समान अवसर मिलना चाहिए जो उत्पादन प्रक्रिया में मर्द करते है। घरेलू कामों में औरत मर्द दोनों की बराबर जिम्मेदारी होनी चाहिए। बच्चे के उपनाम में माता-पिता दोनों का समान जगह मिलना चाहिए। इसके लिए तमाम प्रवृतियों को बदलना होगा।

दशा – अर्थ सदा से भक्ति का अंधा अनुगामी रहा है। गृह और संतान के लिए द्रव्य उपार्जन पुरूष का कर्त्तव्य है। अत: धन स्वभावत: उसी के अधिकार में रहा। प्रत्येक कुमारियाँ व्यस्क होने पर गृहस्थ धर्म में दीक्षित होकर पति के गृह चली जाती है। फिर पुत्रों के समर्थ होने पर वानप्रस्थ आश्रम में पति के पुत्र, पिता की समस्त सम्पति का अधिकारी होता है, परन्तु कन्या को विवाह के अवसर पर प्राप्त होने वाले सप्रेम भेट' के अतिरिक्त और कुछ देने की आवश्यकताओं ही नहीं समझी गयी। विधवा, पुनर्विवाह पर भी जोर दिया जाने लगा। बर्बर समाज में स्त्री पर पुरूष वैसा ही अधिकार रखता है, जैसे किसी अपनी निजी संपत्ति पर। वह खुलकर भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकती मातृत्व की गरीमा से गुरू और पत्नीत्व के सौभाग्य से ऐश्वर्यशालीन होकर भी भारतीय नारी अपने व्यवहारिक जीयन में सबसे अधिक क्षुद्र और रंक है। यही आश्चर्य है। शताब्दिया की शताब्दिया आती जाती रहीं, परन्तु स्त्री की स्थिति की एकरसता में कोई परिवर्तन न हो सका। आज की नारी प्रत्येक पग प्रत्येक सॉस में पुरूष की सहायता की भिक्षा मांगे चल रही है। मन्दिर के देवता के समान ही सब उसकी मौन जड़ता में ही अपना कल्याण समझते रहे। देवत्व का प्रधान अंश मानते रहे, और आज भी मान रहे है। जीवन के सारे रंग उसके आँसुओं से धुल चुके है, सारी शीतलता संताप से उष्ण हो चुकी है। समाज यदि स्वेच्छा से उसकी परिस्थितियों पर विचार नहीं किया, उसके परिवर्तन या संशोधन की आवश्यकता न समझे तो स्त्री का विद्रोह दिशाहीन, आंधी जैसा वेग पकड़ लेगी और तब तक निरन्तर ध्वंस के अतिरिक्त समाज उससे कुछ न पा सकेगा। ऐसी स्थिति न स्त्री के लिए सुखकर है, न समाज के लिए सृजनात्मक है। नारी का पत्नी के सिवाय अलग से कोई पहचान बनाने की गुंजाइश ही नहीं होने देते। स्त्री दशा, वेदना, असहनीय व सोचनीय है। एक गंभीर चिंतन का विषय है।

दिशा – स्त्री और पुरुषों के बीच असमानता को खत्म करना तथा पिता की सम्पति पर सामान अधिकार औरतों का घर से बाहर काम पर जाना, अपना खार्च उठाने में स्वयं सक्षम औरत व मर्द के काम में समान दायित्व, नये समाज की खुबीयों को महसूस करना, तथा पूराने नजरिये को बदलना, गृहिणी हमेशा गृहिणी ही नहीं रहेगी आदि को बदलना, नारी प्रारम्भ से ही शिक्षा ग्रहण करे और श्रम शाक्ति के बारे में सीखें तो औरतों में भी मर्दों की तरह 'अपने रखरखाव' की क्षमता आ सकती है। घरेलू काम औरतों के लिए और बाहर के काम मर्दों के लिए' इस भावना को जेहन से निकालना होगा। समानता की लड़ाई लड़ने वाले नारीवादियों की लड़ाई यही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. निर्मला वर्मा (2002) महादेवी संचयिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 281
2. पुरुषोत्तम लाल भार्गव (1995) साहित्य विमर्श, अजनता पब्लिकेशन्स, मल्का गंज, नई दिल्ली, पृ. 27
3. योगेश कुमार शर्मा (2004) पर्यावरण मानव संसाधन और विकास, पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर (राज.), पृ. 51
4. रंगनायकम्मा (2007) लिंग और जाति, भारत ज्ञान विज्ञान समिति नई, दिल्ली, पृ.65

****